100 आतंकवाद और उसका भविष्य

सृष्टि के प्रारंभ से ही सफलता में शक्ति की भूमिका निर्णायक रही है। जो व्यक्ति जितना ही अधिक शक्तिशाली होता था वह उतना ही अधिक फायदे में रहता था। बाद में व्यक्तिगत शक्ति समूह में बदल गई और समूह की ताकत के बल पर राज्य बनने और बिगड़ने लगे। धीरे–धीरे यह भी स्थिति बदली और अब तो अस्त्र शस्त्र ही वास्तविक शक्ति के आधार बन गये हैं।

प्राचीन समय में शक्ति का प्रयोग या तो राज्य के लिये था या व्यक्तिगत। धर्म के लिये बल धर्म के लिये बल प्रयोग बहुत कम देखने को मिलता था क्योंकि प्राचोन समय में धर्म की परिभाषा संगठन न होकर आचरण से जुड़ी थी। धर्म के साथ हिंसा को सर्वप्रथम जोड़ा इस्लामिक कट्टरपंथियों ने। उन्होंने राजनीति को धर्म के साथ मिला लिया और विस्तार के लिये आंशिक हिंसा को आधार मान लिया। स्वाभाविक ही था कि इस्लाम को अपने दुत विस्तार में उसका लाभ मिला। दुनिया में जितनी तीव्र गति से इस्लाम का विस्तार का हुआ उतना और किसी धर्म का नहीं हुआ। इस्लाम धर्म का भी नहीं। हिन्दू तो बेचारे इस दौड़ में रहे हो नहीं क्योंकि हिन्दुओं ने कभी धर्म, राजनीति और हिंसा को एक साथ जोड़ कर देखा ही नहीं।

हिंसा की उपयोगिता को इस्लाम के बाद ठीक से समझा साम्यवाद ने। इन्होंने धर्म, राजनीति और हिंसा को एक साथ न मिला आर्थिक असमानता, राजनीति और हिंसा को एक साथ मिला लिया। स्वाभाविक ही था कि हिंसा और द्वष की बैशाखी पर सवार होकर साम्यवाद भी बहुत फला फूला। साम्यवाद ने भी बहुत कम समय में जितना प्रगति की वह अभूतपूर्व और आश्चर्यजनक थी। साम्यवाद ने अर्ध तानाशाही का मार्ग चुना और प्रजातंत्र के साथ डटकर मुकाबला किया। एक बार तो ऐसा लगने लगा था कि पूरी दुनिया में लोकतंत्र के स्थान पर साम्यवाद ही साम्यवाद छा जायेगा। भले ही बाद में वे सपने बिखर गये यह अलग बात है किन्तु बल प्रयोग ने साम्यवाद के नाम पर दुनिया में स्वयं को स्थापित तो कर ही लिया था।

ऐसे ही समय में भारत में बल प्रयोग की महत्ता को समझा आर.एस.एस. अर्थात् संघ ने। उसने महसूस किया कि धर्म राजनीति और हिंसा को मिलाकर यदि इस्लाम दुनिया में इतने पैर फैला सकता है तो हिन्दू भारत में क्यों नहीं सफल हो सकता।

हिन्दुत्व के पास भारत में संख्या बल है। समृद्ध विज्ञान है, उज्जवल भूतकाल का इतिहास है। उनके पास इस्लामिक उग्रवाद के विरूद्ध प्रतिक्रिया का भी अच्छा अवसर उपलब्ध है। इस्लाम के पास तो यह सब नहीं। फिर हमें प्रगति करने में क्या बाधा है। स्वाभाविक ही था कि संघ भी बहुत तेज गति से बढ़ा। बहुत कम समय में ही संघ एक राजनैतिक ताकत बन गया। अपने महत्वपूर्ण विस्तार काल में ही यदि संघ और गांधी हत्या कांड एक साथ नहीं जोड़े गये होते तो संघ का विस्तार किसी के रोकन से रूकने वाला नहीं था किन्तु एक अप्रत्याशित घटना ने संघ को बहुत नुकसान किया। फिर भी संघ ने धीरे धीरे स्वयं को पुर्नस्थापित कर लिया और तीन चार वर्ष पूर्व तो स्पष्ट आसार दिखने लगे थे कि संघ भारतीय राजनीति में निर्णायक बढ़त प्राप्त कर चुका है। इस तरह दुनिया में शक्ति के बल पर इस्लाम और साम्यवाद ने स्वयं को स्थापित कर लिया और भारत में संघ ने।

हिंसा जब सिद्धान्त के रूप में स्थापित होने लगती है और उसे सफलता भी मिलने लगती है तब उसमें एक दोष शुरू होता है कि उसमें सीमाओं के सारे बंधन टूट जाते हैं। हिंसा उग्रवाद में और उग्रवाद आतंकवाद में बदला जाता है। यह हिंसा का स्वाभाविक दोष है। इस्लाम हिंसा से बढ़कर उग्रवाद में बदला और उग्रवाद से आतंकवाद में। आज से पचास वर्ष पूर्व इस्लाम में हिंसा का स्थान तो था और उसमें कुछ कुछ उग्रवाद भी था किन्तु उसमें आतंकवाद नहीं था। धीरे–धीरे इस्लाम आतंकवाद की दिशा में बढ़ा और फिर उसमें आगे बढ़ने की अपेक्षा कभी पीछे मुड़कर नहीं देखा। साम्यवाद ने भी हिंसा को उग्रवाद में परिवर्तित किया और अफगानिस्तान, चेकास्लोवाकिया, तिब्बत आदि पर बलपूर्वक कब्जा कर लिया। यद्यपि साम्यवाद ने आतंकवाद का स्वरूप ग्रहण नहीं किया। कुछ लोग नक्सलवाद को आतंकवाद से जोड़कर देखते हैं किन्तु मेरे विचार में ऐसा नहीं है। नक्सलवादी आम नागरिकों की हत्या नहीं करते। वे बहुत चुनकर अपना टारगेट तय करते हैं। नक्सलवादियों की कोई घटना ऐसी प्रकाश में नही आई है जैसी वर्ल्ड टड सेन्टर, बम्बई बम काण्ड, ब्रिटन रेल धमाका या बनारस का श्रमजीवी रेल धमाका हो। अपने टारगेट को मारने में यदि निर्दोष मरे तो वे परवाह नहीं करते किन्तु अनावश्यक निर्दोष हत्या से वे बचते हैं। ऐसा ही सोच कुछ कुछ संघ का भी है। इसलिये मेरे विचार में संघ और नक्सलवाद उग्रवादी तो माने जा सकते हैं पर आतंकवादी नहीं और इस्लामिक कट्टरपंथी आतंकवाद कहे जा सकते हैं।

यह सत्य है कि हिंसा त्वरित प्रगति में सहायक होती है किन्तु दूसरी ओर यह भी सही है कि हिंसा आगे बढ़कर उग्रवाद और अंत में आतंकवाद में बदल जाती है और ज्योंही हिंसा का स्वरूप बदलता है त्योंही इसका पतन शुरू हो जाता है। आज पूरी दुनिया में इस्लाम संकट में है। एक भी ऐसा देश नहीं है जिसकी अब इनके साथ कोई सहानुभूति बची हो। चारों ओर इस्लाम अविश्वसनीय हो गया है। पाकिस्तान के राष्ट्रपति को सारी दुनिया के समक्ष गिड़गिड़ाते हुए सफाई देनी पड़ रही है। ब्रिटेन के इस्लामिक विद्वानों ने सूझबूझ से काम लिया और आतंकवाद के विरूद्ध फतवा जारी कर दिया। अमेरिका के इस्लामिक विद्वान पता नहीं क्यों इस सच्चाई को स्वीकार करने में देर कर रहे हैं। इस्लाम के समक्ष अब अस्तित्व का संकट है या तो कट्टरपंथियों को हिंसा, उग्रवाद और आतंकवाद को सदा सदा के लिये तिलांजलि देनी होगी या इस्लाम स्वयं को समाप्त कर लेगा। अब दुनिया आतंकवाद के खिलाफ एकजुट हो रही है।

साम्यवाद भी संकट में है। साम्यवाद दुनिया के नक्शे से तो करीब करीब गायब हो चुका है किन्तु भारत में नक्सलवाद के रूप में उसके अवशेष बचे हैं। केरल, बंगाल और त्रिपुरा के साम्यवाद को आप साम्यवाद नहीं कह सकते क्योंकि उसमें उग्रवाद और आतंकवाद नहीं है। हिंसा भी वे कर नहीं पा रहे। इसलिये यह प्रमाणित हो चुका है कि नक्सलवाद पर ही उग्रवाद का लेबल लगाया जा सकता है, साम्यवाद पर नहीं। नक्सलवाद बहुत सफलता पूर्वक आगे बढ़ रहा है। किन्तु पिछले एक दो माह की घटनाओं को देखें तो सम्पूर्ण भारत में नक्सलवाद के विरूद्ध भी वातावरण बन रहा है। प्रशासन अब धीरे–धीरे सतर्क हो रहा है और संभव है कि एक दो वर्षों में ही भारत में नक्सलवाद के विरूद्ध प्रशासन मजबूत कदम उठा ले। मेरे विचार में व्यवस्था परिवर्तन के लिये नक्सलवाद का भी भविष्य कोई अच्छा नहीं।

. संघ भी धीरे–धीरे पतन की ओर ही है। तीन वर्ष पूर्व की संघ की संभावनाएँ और वर्तमान में आसमान जमीन का अन्तर है। गुजरात में जो कुछ हुआ और उसकी जैसी पूरे विश्व में प्रतिक्रिया हुई, उससे उदारवादी संघ समर्थकों का संघ समर्थन से बहुत तीव्र पलायन हुआ है। अब तो संघ के अपने पालतु घोड़े भी संघ को आँख दिखान लगे हैं। संघ का शक्ति क्षरण भी बहुत तीव्र गति से हो रहा है।

इस्लाम, साम्यवाद और संघ के अतिरिक्त भी अनेक छोटे छोटे समूह हैं जो हिंसा पर विश्वास करते हैं। इनमें लिट्टे, आई.आर.ए. आदि शामिल हैं। लिट्टे का भविष्य तो स्पष्ट दिख रहा है। आई.आर.ए. ने तीस वर्षों तक की हिंसक लड़ाई के बाद सच्चाई को स्वीकार करके हिंसा का मार्ग छोड़ दिया। हम अन्य छोटे छोटे समूहों की चर्चा नहीं कर रहे। हम तो सिर्फ हिंसा, उग्रवाद और आतंकवाद का कीर्तिमान स्थापित करने की दिशा में चल रहे इस्लाम, साम्यवाद और संघ के कट्टरपंथियां के ही भविष्य का विश्लेषण कर रहे हैं।

ये संगठन जितनी जल्दी हिंसा की तात्कालिक सफलता के दीर्घकालिक परिणामों को समझ लें, स्वीकार कर लें और हिंसा से किनारा कर ले उतना ही इन संगठनों के हित में है। अब तक इन संगठनों की हिंसा से समाज को क्षति थी, इन संगठनों को क्षति नहीं थी। किन्तु अब तो हिंसा का दुष्प्रभाव इन संगठनों के अस्तित्व को संकट में डाल सकता है। अब भी समय है कि परिस्थितियों का ठीक से आंकलन करके भविष्य का नीति निर्धारण किया जाये।

न्यायपालिका, विधायिका और सोमनाथ

लोकसभा अध्यक्ष श्री सोमनाथ चटर्जी ने असम आव्रजन कानून सम्बन्धी सर्वोच्च न्यायालय के निर्णय को आधार बनाकर पुनः न्यायपालिका और विधायिका के अधिकारों की सीमा रेखाओं पर बहस की आवश्यकता बताई है। इसके पूर्व भी उन्होंने झारखण्ड मुद्दे को केन्द्र बनाकर ऐसी ही असफल कोशिश की थी। मैं सोमनाथ जी के विचारों से तो सहमत नहीं किन्तु इस बात से पूरी तरह सहमत हूँ कि न्यायपालिका और विधायिका के अधिकारों की सीमाओं पर एक स्वतंत्र बहस की आवश्यकता है।

लोकतंत्र में कानून का शासन होता है, शासन का कानून नहीं, सभी कानून एक संवैधानिक व्यवस्था के अन्तर्गत बनाये जाते हैं जिसकी संरचना प्रयोग और सदुपयोग के लिये क्रमशः विधायिका, कार्यपालिका और न्यायपालिका की रचना की गई। तीनों का समन्वय ही व्यवस्था है और टकराव ही अव्यवस्था। संविधान की संरचना कुछ ऐसी की गई है कि तीनों इकाइयाँ एक दूसरे की सहायता भी कर रहें और नियंत्रक भी। यदि अपने कार्य में कोई इकाई कमजोर पड़ती है तो अन्य इकाईयाँ उसकी सहायता करती है और यदि कोई इकाई अपने अधिकारों का दुरूपयोग शुरू कर दे तो अन्य इकाईयाँ उसे नियंत्रित करती है। इस व्यवस्था को ही Check and Balance System कहा जाता है। इस System में तीनों इकाईयों की तीन भूमिकाएँ हुआ करती हैं (1) सहायक (2) तटस्थ (3) प्रतिरोधी। परिस्थिति अनुसार तीनों इकाईयों को तीनों प्रकार की भूमिकाओं का निर्वाह करना पड़ता है। ये भूमिकाएँ बिल्कुल भिन्न भिन्न होती है आर परिस्थिति अनुसार बदलती भी रहती है। जब किसी इकाई की नीतियाँ और नीयत दोनों ही ठीक हों तो अन्य इकाईयाँ उसकी सहायता करती है। जब किसी इकाई की नीतियाँ और नीयत में से एक ठीक हो और एक गलत तो उसे मार्ग दर्शन दिया जाता है और कानून के अनुसार संशाधन के अवसर दिये जाते हैं अर्थात् शेष इकाईयाँ तटस्थ रहती है किन्तु जब किसी इकाई की नीतियाँ भी गलत हों और नीयत भी तब ऐसी इकाई की उच्चश्रृंखलता को नियंत्रित करने का प्रयास अन्य दो इकाईयाँ करती है। यही लोकतंत्र का नियम है और यही व्यवस्था है किन्तु यदि इन तीनों स्थितियों से हटकर चौथी स्थिति बनने लगे कि किसी इकाई की नीयत और नीतियाँ गलत होने के आधार पर अन्य इकाईयाँ स्वयं को प्रतिस्पर्धा में शामिल कर लें और कौन सर्वोच्च के लिये शक्ति प्रदर्शन शुरू हो जावे तो लोकतंत्र ही खतरे में पड़ जाता है अर्थात् व्यवस्था अव्यवस्था में बदल जाती है।

वर्तमान समय में कुछ ऐसा ही हो रहा है कि न्यायपालिका और विधायिका सर्वोच्च कौन सी प्रतिस्पर्धा में कूद पड़ी है। टकराव का प्रारंभ आपात्काल के पूर्व शुरू हुआ जब भारत में विधायिका ने संसद सर्वोच्च का नारा उठाना शुरू किया। बात इतनी बढ़ी कि अच्छे अच्छे सांसद और मंत्री भी संसद सर्वोच्च कहने लगे। आश्चय होता है कि कोई व्यक्ति अधिकारों के मद में इतना सामान्य ज्ञान भी खो जाता है कि भारत लोकतंत्र है और लोकतंत्र में कोई इकाई सर्वोच्च हो ही नहीं सकती। सभी इकाईयों के अधिकार दायित्व तथा हस्तक्षेपों की एक सीमा बनी हुई है। विधायिका और न्यायपालिका के बीच अधिकारों की एक स्पष्ट विभाजन रेखा है कि न्यायपालिका Justice According to Law की सीमाओं में इस प्रकार बंधी है कि वह सिर्फ कानून की व्याख्या करने तक सीमित है, न्याय की व्याख्या करने का उसे कोई अधिकार नहीं। दूसरी ओर विधायिका Law According to Justice के आधार पर न्याय की व्याख्या तो कर सकती है किन्तु कानून का नहीं। दोनों की अपनी सीमाएँ हैं। जब संसद सर्वोच्च का नारा देकर विधायिका ने उच्चश्रृंखलता शुरू की और उसने कार्यपालिका को भी दबा दिया तो न्यायपालिका किंकर्त्तव्यविमूढ़ हो गई।

विधायिका को पहली चुनौती दी शेषन ने। सारे कानूनों की मनमानी व्याख्या करते हुए सभी कानूनों को उन्होंने किनारे कर दिया और कानूनी तरीके से राजनैतिक उच्चश्रृंखलता पर कुछ अंकुश लगाया। न्यायपालिका ने भी इस कार्य में शेषन की समर्थन और प्रशंसा प्राप्त हुई। न्यायपालिका भी पृथक से विधायिका पर अंकुश के लिये जनहित याचिका के रूप में नई सोच पर काम कर ही रही थी। शेषन काल में जनसमर्थन से न्यायपालिका का और उत्साह बढ़ा और उसने कानून के अनुसार न्याय न्यायपालिका का और उत्साह बढ़ा और उसने कानून के अनुसार न्याय की लीक से हटकर न्याय देना शुरू कर दिया। न्यायपालिका विधायिका के काम करने लगी। सीधा न्याय देने की दौड़ में न्यायपालिका इस सीमा तक कूद पड़ी कि उसने एक साधारण पोस्ट कार्ड तक को याचिका मानकर न्याय देना शुरू कर दिया। न्यायपालिका यह भूल गई कि उसे सीधा न्याय देने का अधिकार नहीं। वह तो विधायिका को तदनुसार न्याय देने के लिये कानून बनाने की सलाह दे सकती है। मामला इस सीमा तक आगे बढ़ा कि न्यायपालिका हर मामले में पैर फंसाने लगी और धीरे–धीरे न्यायपालिका सर्वोच्च की भावना मुखर होने लगी। न्यायपालिका की इस मनमानी के विरूद्ध यद्यपि अनेक सांसद कसमसाते थे किन्तु इस खतरे के विरूद्ध पहली आवाज उठाई चन्द्रशेखर जी ने। राजनेताओं के चरित्र पतन को चुनौतो और सीधा न्याय मिलने में न्यायालयीन सक्रियता से भारत का आम नागरिक प्रसन्न था इसलिये राजनेताओं को न्यायपालिका के विरूद्ध भले ही जनसमर्थन न मिला हो किन्तु उनसे मानस में असंतोष की ज्वाला तो जल ही रही थी। न्यायपालिका के अनावश्यक हस्तक्षेप से सर्वाधिक दुखी थे साम्यवादी। साम्यवादी न्यायपालिका के अनावश्यक हस्तक्षेप मात्र से दुखी नहीं थे। साम्यवाद तो सिद्धान्त रूप में ही संसद सर्वोच्च का पक्षधर है। न्यायपालिका का हस्तक्षेप तो एक बहाना मात्र था। किन्तु साम्यवादियों ने न्यायपालिका के विरूद्ध हल्ला बोलने का जो अवसर चुना वह पूरी तरह उल्टा पड़ गया। उन्होंने पहला अवसर चुना जब न्यायालय ने हड़ताल और चक्का जाम को अवांछित घोषित कर दिया। मेरे विचार में हड़ताल करने और चक्का जाम करने तक का तो अधिकार सबको है किन्तु चक्का जाम कराने या हड़ताल कराने का अधिकार नहीं हो सकता। उन स्थितियों में तो बिल्कुल नहीं जब आपके इस काम से कोई असंबद्ध पक्ष प्रत्यक्ष प्रभावित हो।

सोमनाथ जी जोवन भर अपनी पार्टी के प्रति वफादार रहे हैं। अब वे जबसे लोकसभा अध्यक्ष बने हैं तबसे वे विधायिका के प्रति पूरे पूरे वफादार हैं। वे न्याय और समाज की अपेक्षा विधायिका के हितों के प्रति अधिक संवेदनशील हो गये हैं। सांसदों के मन में न्यायपालिका के रोज रोज के हस्तक्षेप के प्रति रोष था ही, उनके दलीय संस्कार भी वैसे ही रहे इसलिये उन्होंने एक सही बात को गलत संदर्भ से उठा दिया। झारखंड का मसला एक भिन्न प्रकार का था जहां राज्यपाल और विधान सभा अध्यक्ष ने मिलकर कानून का दुरूपयोग किया था। प्रश्न यहां सिर्फ नीतियों तक सीमित न होकर नीयर पर आ गया था। एक कर्फ्यू के दौरान देखते हो गोली मारने के आदेश जारी है। यदि ड्यूटी पर तैनात सिपाही किसी ऐसे व्यक्ति को गोली मार दे जो वास्तव में कर्फ्यू का उल्लंघन तो कर रहा था किन्तु उसकी उक्त सिपाही से व्यक्तिगत शत्रुता भी थी और उस व्यक्ति का आचरण अनेक अन्य कर्फ्यू का उल्लंघन करने वालों से भिन्न नहीं था तो न्यायालय के ऐसे मामले में हस्तक्षेप करना चाहिये। झारखंड में राज्यपाल और विधानसभा अध्यक्ष ने मिलकर षड़यंत्र

किया यह स्पष्ट होने के बाद यदि न्यायपालिका हस्तक्षेप नहीं करती तो कौन करता? राष्ट्रपति की इच्छाओं का सम्मान नहीं हुआ, विधायिका के अधिकारों पर तो आक्रमण ही था और कोई तीसरा मार्ग शेष था ही नहीं। कार्यपालिका ने विधायिका पर इतना बड़ा आक्रमण किया था जो यदि सफल हो जाता तो भारत में एक नये टकराव की शुरूआत हो सकती थी। न्यायपालिका ने ऐसे समय में हस्तक्षेप करके बहुत सूझबूझ का परिचय दिया।

असम कानून का मसला भी कुछ कुछ वैसा ही है। स्पष्ट दिखता है कि असम कानून मामले में न विधायिका नीतियाँ ठीक है न नीयत। और जब किसी इकाई द्वारा नीति भी गलत और नीयत भी गलत का प्रयोग किया जाये तो अन्य इकाईयों को ऐसे मामलों में अंकुश लगाना ही चाहिये। न्यायपालिका का यह हस्तक्षेप झारखंड मसले जितना तो स्पष्ट नहीं किन्तु कुल मिलाकर यह कार्य ठीक ही माना जा सकता है। विधायिका की मनमानी पर रोक लगानी ही चाहिये।

इन सब मामलों में लोकसभा अध्यक्ष श्री सोमनाथ चटर्जो की छवि को बहुत क्षति हुई है। उन्हें अपने दलगत संस्कार और विधायिका के हितों के पहरेदार की छवि से ऊपर उठना चाहिये था। उन्होंने एक विचित्र और बेतुका तर्क दिया कि कल को न्यायालय कोई मुख्यमंत्री भी नियुक्त कर सकता है। मेरे विचार में यदि किसी प्रदेश के राज्यपाल और विधानसभा अध्यक्ष ने अपने अधिकारों का दुरूपयोग करते हुए किसी उचित व्यक्ति को मुख्यमंत्री बनने से रोक दिया तो न्यायालय को वैसा भी करना चाहिये। न्यायालय को विधायिका के कार्यों में हस्तक्षेप नहीं करना चाहिये जो कि वर्तमान समय में वह जनहित के नाम पर धडल्ले से कर रही है। न्यायपालिका को न्यायपालिका सर्वोच्च के लोक लुभावन नारे से बचना चाहिये। न्यायपालिका सर्वोच्च है ऐसा न तो सच है नहीं न्यायपालिका को इस प्रतिस्पर्धा में पड़ना चाहिये। सामान्यतया न्यायालयों को विधायिका और कार्यपालिका के कार्यों में सहयोग की भूमिका अपनानी चाहिये। बीच की स्थिति में वे विधायिका और कार्यपालिका को सर्तक कर सकते हैं और यदि ये इकाईयाँ बिल्कुल ही अति करने लगे तो न्यायपालिका को प्रतीक स्वरूप वैसा हस्तक्षेप करना चाहिये जैसा उसने झारखंड प्रकरण में किया। किन्तु न्यायपालिका को हमेशा ही सीधा न्याय देने से बचने का प्रयास करना चाहिये। क्योंकि आज बदनाम विधायिका के कारण न्यायपालिका के सर्वोच्च स्थान पर कलाम सरीखे अच्छे भले इन्सान ही आते रहेंगे। यदि कभी शेषन सरीखा कोई दबंग राष्ट्रपति बन बैठा तो न्यायपालिका सर्वोच्च या विधायिका ऐसे झगड़े मिनटों में त्रिपक्षीय कर देगा। अच्छा यही होगा कि सब इकाईयां अपनी सीमाओं में रहते हुए सर्वोच्च बनने का प्रयास बन्द कर दें और एक दूसरे के पूरक मार्गदर्शक और नियंत्रक की भूमिका का चयन बहुत सोच समझकर तथा परिस्थितियों का आंकलन करके ही करें।

पत्रोत्तर

1. श्री अशोक राजवैद्य, बैरसिया, भोपाल, मध्यप्रदेश

जनमत जागरण की दिशा ठीक है, भले ही कम है। सफलता निश्चित दिखती है। अब तक का मेरा अनुभव यह है कि जो कट्टर और दकियानूसी होते हैं वे अधिक इमानदार होते हैं। जो उदार हृदय होते हैं वे भौतिक या लौकिक प्रगति की दौड़ में भ्रष्ट हो जाते हैं। हमें दोनों प्राप्त करना है अर्थात् इमानदार (सत्य) और उदार (अहिंसक)।

राजनीति और धर्म दोनों ही समाज के लिये बने हैं। राजनीतिक व्यवस्था मनुष्य को बाह्य बुराइयों से दूर करती है तो धर्म आन्तरिक बुराइयों से। राजनीति पूरी तरह धूर्तता से भर गई है। आपके प्रयास कुछ परिणाम दे सकते हैं।

उत्तर – आपने जो विश्लेषण किया वह सही है कट्टरवादी लोग अपने आचरण में तो इमानदार होते हैं किन्तु इमानदारी और आचरण की वे स्वयं अपनी परिभाषा दूसरों पर थोपना चाहते हैं जो गलत है। किसी व्यक्ति को यह अधिकार नहीं कि वह दूसरों को व्यक्तिगत आचरण की अन्तिम परिभाषा बनाकर उस अनुसार दूसरे को आचरण हेतु बाध्य करें। उदारवादी लोग दूसरों पर तो अपने विचार नहीं थोपते किन्तु स्वयं भी आचरण के प्रति गंभीर नहीं रहते। हमें ऐसी व्यवस्था करनी चाहिए कि कोई अपना आचरण तो गड़बड़ न कर सके किन्तु दूसरों के आन्तरिक मामलों में भी दखल न दे। ऐसा ही प्रयास हमारा चल रहा है।

प्रश्न 2. श्री फूलचन्द जैन, पूर्व विधायक, मुंगेली, बिलासपुर, छत्तीसगढ़

ज्ञानतत्व मिला। अंक सतान्नवे में आपने संविधान के संशोधित प्रारूप का विवरण भेजा है वह बहुत ही सारगर्भित और उपयोगी है। फिर भी निम्न बिन्दुओं पर और स्पष्ट व्याख्या की आवश्यकता है :–

क. बिन्दु चौंतीस अ–मंत्री राष्ट्रपति की इच्छा पर्यन्त पद धारण करेंगे। इसमें प्रधानमंत्री का जिक्र नहीं है।

ख. यदि किसी विषय पर प्रधानमंत्री की सलाह से राष्ट्रपति सहमत न हों तब क्या व्यवस्था है।

ग. आपने चार सौ पंचान्नवे लोकसभा और प्रत्येक लोकसभा में बीस जिले लिखे। इस तरह तो निन्यानवे सौ जिले हो जायेंगे।

घ. बिन्दु अंठान्नवे अनुसार एक परिवार के उतने उप परिवार होंगे जितने गांवों में रहते हों। एक व्यक्ति के चार लड़के चार गांवों में रहते हैं। क्या चार उप परिवार माने जायेंगे।

च. शासकीय परिवार, एकल परिवार की पहेली को और स्पष्ट करें।

छ. ग्राम सभा से संघ सभा तक अपने अपने अधिकार और कर्त्तव्य स्वयं तय करेंगें। यह कैसे संभव है। इसी तरह नीचे स्तर की सभा को उपरी सभा का कैसे मार्गदर्शन, सहयोग नियंत्रण मिलेगा।

ज. बिन्दु 18 में लिखा है कि कोई भो सभा या पंचायत अपने आंतरिक सव्यवहार किसी भी भाषा में कर सकेंगे। इसमें हिन्दी की भूमिका क्या होगी ?

झ. बिन्दु 146+147 में लिखा है कि यदि राष्ट्रपति का सामाधान हो जाता है कि देश या उसके किसी भाग में आपात्काल लगाना आवश्यक है तो वह मुख्य न्यायाधीश तथा उपराष्ट्रपति से प्रत्यक्ष चर्च करके आपात्काल घोषित कर सकेगा। ऐसे आपात्काल में राष्ट्रपति, मुख्य न्यायाधीश और उपराष्ट्रपति का यह विशेषाधिकार होगा कि वे उन सभी विवेकाधिकारों का उपयोग करें जो वे आवश्यक समझें।

ट. आपने श्रम मूल्य वृद्धि की चिन्ता की किन्तु श्रमिक इमानदारी से काम करें इसका कोई उपाय नहीं बताया।

उत्तर :– अंक सत्तान्नवे पर कई पत्र मिले। किन्तु आपने पत्र से ऐसा लगा कि अपने पूरे अंक का सूक्ष्म अध्ययन किया है। प्रश्न भी बहुत अच्छे और सुलझे हुए हैं।

(क) संविधान के अनुसार बिना मंत्री के सरकार चल सकती है किन्तु बिना प्रधानमंत्री के नहीं चल सकती। इसलिये मंत्री पद तो राष्ट्रपति की इच्छा पर्यन्त रहेगा किन्तु प्रधानमंत्री पद नहीं। यहाँ मंत्री से तात्पर्य मंत्री पद से है, व्यक्ति से नहीं।

(ख) यदि प्रधानमंत्री की किसी सलाह से राष्ट्रपति सहमत न हों तब वे उस सलाह को फिर से विचार हेतु मंत्रिमंडल को वापस कर सकते हैं किन्तु ऐसी दुबारा दी गई सलाह पर राष्ट्रपति को हस्ताक्षर करना ही होगा। यही व्यवस्था अभी भी चल रही है और इसमें कोई परिर्वतन उचित नहीं।
(ग) हमारे व्यक्ति से राष्ट्र तक की व्यवस्था में पांच सीढ़ियां बनाई है (1) परिवार (2) गांव (3) ब्लाक या जिला (4) प्रदेश (5) केन्द्र। अनुमानतः एक हजार की आबादी का एक गांव, एक लाख अर्थात् सौ गांवों का एक ब्लाक या जिला, एक करोड़ या एक सौ ब्लाकों का प्रदेश और एक सौ पांच करोड़ या सबको मिलाकर एक सौ प्रदेशों का केन्द्र बनेगा। यह सब इसलिये किया गया है कि प्रत्येक परिवार की पहचान एक निश्चित कोड नं. से हो। जिसमें पहले दो अंक प्रदेश के दो बाहर वाले जिले की, बाद के दो गांव की और अन्तिम तीन अंक परिवार की निश्चित पहचान बने। यही कोड नम्बर उस परिवार का टेलीफोन नं0, बैंक एकाउन्ट, पोस्टल सर्विस, सेल्टैक्स इन्कमटैक्स, न्यायालय में केश आदि की पहचान हो। विदेशियों की पहचान भी संभव है और राशन कार्ड भी जाली नहीं बनेंगे। जनसंख्या की गिनती भी बार बार नहीं करानी होगी। किसी व्यक्ति को खोजना बहुत आसान हो जायेगा। जिले को आप ब्लाक कह दें तो सब ठीक समझ जायेंगे।
(घ) परिवार और उपपरिवार की आवश्यकता इसलिये आई कि सम्पूर्ण सम्पत्ति परिवार की होगी। इस सम्पत्ति पर दो प्रतिशत कर केन्द्र लेगा। परिवार का एक प्रमुख होगा। किन्तु यदि परिवार के सदस्य कई गांवों में रहते हों? तब उक्त परिवार का संबंध ग्राम सभा से क्या और कैसे होगा। कोई आदमी रहेगा तमिलनाडु में और परिवार पंजीकृत छत्तीसगढ़ में। इसलिये उपपरिवार बनाये गये। उपपरिवार एक अकेले का भी हो सकता है। ये उपपरिवार परिवार की शाखाएँ मात्र होगी जिनका ग्रामसभा से तो संबंध स्थानीय होगा किन्तु शासन से संबंध सबका मिलाकर होगा क्योंकि सम्पत्ति सबकी एक साथ है।
(च) शासकीय परिवार और एकल परिवार प्रणाली कुछ जटिल है। हम पूर्व से ही समझते हैं कि इस प्रणाली के स्थान पर कोई और सरल तरीका हो किन्तु क्या सरल तरीका हो यह समझ में नही आया।

हम भारत को परिवारों का संघ मानते हैं व्यक्तियों का भी नहीं और राज्यों का भी नहीं। परिवारों का संघ बनाने से अपराध नियंत्रण में भी सुविधा होगी और सम्पत्ति विवादों में भी। इससे सामाजिक जीवन में धन की उच्चश्रृंखलता पर भी विराम लग सकेगा क्योंकि सम्पत्ति का अधिकार व्यक्तिगत न होकर परिवार का हो जायेगा। अब प्रश्न उठा कि यदि कोई स्वच्छन्द रहना चाहे और परिवार न बनावे तो उसकी भूमिका हो। उसे नियंत्रित करने हेतु उसके किसी न किसी अधिकार में कटौती करनी थी। हमने उसकी व्यवस्था में भागीदारी रोक दी जब तक वह परिवार नहीं बनाता। वह ग्राम सभा का सदस्य नहीं होगा और इस तरह उसे कहीं भी वोट देने का कोई अधिकार नहीं होगा। उसके चार अधिकार (1) जोने का (2) अभिव्यक्ति का (3) स्वनिर्णय का (4) सम्पत्ति का सुरक्षित रहेगा। अब एक प्रश्न उठा कि यदि किसी व्यक्ति को कोई परिवार निकाल दे और कोई शामिल न करे उसका भरण पोषण या अन्य अधिकार कैसे होंगे। उसके लिये प्रत्येक गांव में एक ग्राम परिवार होगा जिसमें ऐसे सभी लोग शामिल होंगे। ऐसे लोगों के भोजन, वस्त्र, निवास की सारी व्यवस्था ग्राम सभा करेगी किन्तु वे पृथक सम्पत्ति का उपयोग तक नहीं करेंगे जब तक वे परिवार न बना लें। इस समस्या पर और आगे विचार करके कुछ नया तरीका सोचने की आवश्यकता है।
(छ) ग्राम सभा से संघ सभा तक अपने दायित्व और अधिकार स्वयं तय करेंगे। यह मुद्दा भी जटिल है। इस पर विचार करना होगा और बांटकर लिखना होगा कि परिवार, गांव, जिला प्रान्त और केन्द्र के दायित्व और अधिकारों का विभाजन कैसे हो या उपर वाली सभा से नीचे वाली सभा के संबंध कैसे हो। इस संबंध में भी और सोचने की जरूरत है।
(ज) किसी व्यक्ति, परिवार, गांव, जिला या प्रदेश की अपनी आंतरिक भाषा कौन सी हो इसका निर्णय उसके बाहर का आदमी क्यों करे। भाषा हमेशा श्रोता की होती है वक्ता की नहीं। दुर्भाग्य से अब तक भारत में भाषा वक्ता की मानी जाती है। हम केन्द्र सरकार की भाषा तो हिन्दी घोषित कर सकते हैं किन्तु अन्य पर कोई भाषा थोप नहीं सकते। भाषा की समस्या इसलिये उलझ गई कि अंग्रेजी को सरकारी प्रोत्साहन मिला। यदि भाषा का सवाल सरकारी हस्तक्षेप से अलग होता तो यह झगड़ा ऐसा रूप नहीं ले पाता।
(झ) मंत्रिमंडल यदि आपात्काल का निर्णय करता है तो राष्ट्रपति मुख्य न्यायाधीश और उपराष्ट्रपति की सलाह लेकर आपात्काल लगा सकते हैं। इन तीनों को विशेषाधिकार होगा कि वे विवेकाधिकार का उपयोग करें अर्थात् ऐसे मामले पर विचार करके निर्णय करने मं वे तीनों व्यक्तिगत रूप से सक्षम होंगे। राष्ट्रपति को मंत्रिमंडल से सलाह नहीं लेनी होगी या मुख्य न्यायाधीश भी जजों की टीम से कोई राय लेने हेतु बाध्य नहीं होंगे। ये तीन मिलकर आपात्कालीन फैसले कर सकते हैं जिसमें प्रधानमंत्री की भूमिका नहीं होगी।
(ट) श्रम मूल्य एक बहुत ही पेचीदा प्रश्न है। जब भी श्रम मूल्य बढ़ाया जाता है तो श्रम मूल्य हमेशा घटता है। श्रम मूल्य को बढ़ाने से श्रम की मांग घटती है। श्रम मूल्य बढ़े इसका एक ही समाधान है कि श्रम की मांग बढ़े। यदि श्रम व्यवस्था से सभी सरकारी हस्तक्षेप और संरक्षण समाप्त करके श्रम की मांग बढ़ने दी जाये तो कार्य की गुणवत्ता स्वयं बढ़ जायेगी। आज काम कम इसलिये होता है कि श्रमिक को कानूनी संरक्षण प्राप्त है। पूरे के पूरे श्रम कानून श्रमिकों के नाम पर कुछ बुद्धिजीवियों को अतिरिक्त लाभ पहुँचाने का षड़यंत्र है। किसी भी श्रम कानून की कोई आवश्यकता ही नहीं है। मालिक मजदूर का शोषण इसलिये करता है कि श्रम की मांग तो समाज से कम होती है और उपलब्धता अधिक होती है। पांच सौ बेरोजगारों में से पांच को बहुत अच्छा रोजगार देकर उसे श्रम कानूनों का भी लाभ दिला दें तो चार सौ पंचान्नवे का क्या होगा? अब ऐसे लोगों को बरोगारी भत्ता देने की बात चल रही है। मेरे विचार में सब ढ़ोंग है और श्रम शोषण के विभिन्न मार्ग है। सभी कानून समाप्त करके श्रम की मांग वृद्धि को रोकना बन्द कर दीजिये। श्रम की मांग भी बढ़ जायेगी और श्रम की गुणवत्ता भी बढ़ जायेगी। जो कम काम करेगा उसकी नौकरो तुरंत समाप्त। कोई श्रम कानून रहेगा ही नहीं जो उसे संरक्षण देगा। वर्तमान श्रम कानून पूंजीपतियों और बुद्धिजीवियों की छीनाझपटी में बुद्धिजीवियों को लाभ पहुँचाने के लिये हैं। इनका श्रम या श्रमजीवियों से कोई संबंध नहीं।

यदि कोई इस सोच को गलत मानता है तो वह मुझे आमंत्रित करे। मैं आकर इस संबंध में प्रत्यक्ष बहस हेतु तैयार हूँ।

3. श्री इकबाल कुमार खान, समाज सेवक, डिहरी आन सोन, रोहितास, बिहार

3. कई जगह लिखा मिलता है कि ''मेरा भारत महान।'' मैंने घूम घूमकर भारत में महानता खोजी ता मिली ही नहीं। संसद भवन पर आतंकवादी हमला दिखा, लिबर्टी आर सत्यम् सिनेमा में आतंकवादी हमला भी दिख गया। गुड़गाँव में पुलिस से पिटते मजदूर दिखे तो अयोध्या मंदिर में लश्करे तोयबा का हमला दिखा। एक ओर काम के अभाव में आत्महत्या करने नौजवान दिखे तो दूसरी ओर चारा घोटाला, बाढ़ राहत अलकतरा घोटाला करके शान से मूँछ ऐंठते नेता। त्याग और तपस्या का गेरूवा वस्त्र पहन कर बाबा बने साधु द्वारा मंदिर के नाम पर जमीन पर कब्जा करके नाबालिक को बहकाते फुसलाते भी मैंने इसी भारत में देखकर कहा कि मेरा भारत महान वाक्य अधूरा है। इसे ऐसा होना चाहिये ''मेरा भारत महान, जहाँ हर शरीफ आदमी परेशान''।

4. श्री रामकृष्ण जी पौराणिक, 10/8 अलकनन्दा नगर, इन्दौर, मध्यप्रदेश

आप जो प्रयत्न कर रहे हैं। वह उन्नीस सौ पांच के बंग भंग आन्दोलन या उन्नीस सौ बयालीस के भारत छोड़ो आंदालन से भी अधिक कठिन दिखता है। किन्तु जितनी उस समय आंदोलन की आवश्यकता थी, आज भी उतनी ही है।

बहुत सूझ बूझ और मिलजुलकर कदम उठाना चाहिये। बिना भेदभाव और पूर्वाग्रह के सभी सामाजिक कार्यकर्ता और लोक संगठनों को जोड़ने की जरूरत है। अखण्ड ज्योति जुलाई पांच के पृष्ठ पैंसठ में सूचना छपी है कि ''अन्य प्रगतिशील संगठनों के साथ जुड़कर साझेदारी।'' मेरा निवेदन है कि ऐसे सबसे सम्पर्क बना रहे।

5. श्री सुहास सरोदे, अध्यक्ष सर्वोदय विचार परिषद, दत्त चौक यवतमाल, महाराष्ट्र

ज्ञान तत्व पत्रिका मिलती है। प्रयत्न सराहनोय है। तानाशाही की जगह लोकशाही और लोकशाही भी प्रतिनिधिक न होकर सहभागी होनी चाहिये। सत्ता का केन्द्रीयकरण तो लोकतंत्र का वस्त्रहरण है। हमें विकेन्द्रित शासन व्यवस्था और विकेन्द्रित अर्थव्यवस्था चाहिये। गांव गांव में ग्राम स्वराज्य स्थापित हा। गांव गांव से यह नारा उठे कि ''दिल्ली, मुम्बई में हमारी सरकार गांव गांव में हम सरकार।'' दादा तुकाराम जी गीताचार्य, ठाकुरदास जी बंग, अन्ना जी हजारे, बनवारीलाल जी शर्मा, देवी जी तोफा, श्रीमती सुरेखा दलवी आदि से जुड़कर योजना बनावें।

उत्तर – मेरा भी प्रयत्न है कि मिलजुलकर ग्राम स्वराज्य की दिशा में प्रयत्न किया जावे। मैंने सर्वोदय से इस संघर्ष के लिए ज्यादा सम्पर्क किया क्योंकि ग्राम स्वराज्य का मुद्दा पूरी तरह गांधी विनोबा जयप्रकाश के विचारों से ही जुड़ा है। मेरी मान्यता अनुसार सर्वोदय में चरित्र का भी अभाव नहीं। सर्वोदय के कार्यकर्ताओं ने मुझे भरपूर मार्गदर्शन और सहयोग दिया। ठाकुरदास जी बंग ने तो पूरी पूरी शक्ति ही इस काम में लगा दी थी। किन्तु जब यह सम्पर्क सर्वसेवा संघ तक पहुँचा और उन्हें लगा कि यह मार्ग सन पचहत्तर सरीखा आंदोलन की दिशा ग्रहण कर सकता है तो उन्होंने इससे हाथ खींचना उचित समझा। सर्वसेवा संघ के पास गांधी विनोबा जयप्रकाश के बताये हुए अनेक कार्यक्रम पहले से ही है। अतः उन्हें इस विवाद में पड़ना उचित नहीं जचा। बंग साहब की जिद्द के सामने उन्होंने प्रस्ताव पारित भी कर दिया किन्तु छः माह में ही उस प्रस्ताव का वही परिणाम हुआ जैसा अब तक होता रहा है। अन्य सैकड़ों प्रस्तावों में यह त्रिसूत्रीय संविधान संशोधन अभियान भी चींटी की चाल से बढ़ने लगा। दो माह तक तो अभियान धीरे–धीरे चला किन्तु दो माह बाद ही वह अभियान रोड जाम में फंस गया। अभियान कई माह से रूका पड़ा है। मैं तो सर्वसेवा संघ की गाड़ी से उतरकर पैदल ही अन्य साथियों के साथ चलना शुरू कर दिया हूँ क्योंकि सवसेवा संघ के पास तो गांधी विनाबा जयप्रकाश के नाम पर हजारों काम हैं किन्तु मैं तो एक और सिर्फ एक ही काम को लेकर बढ़ रहा हूँ। मेरे हार्दिक इच्छा है कि जो लोग शासन के अधिकार दायित्व तथा हस्तक्षेप न्यूनतम होने के पक्ष में जनमत जागरण हेतु तैयार हैं वे मुझे भी अपना सहयोगी समझें। मैं हर समय उनके साथ तैयार मिलूंगा।

6. श्री शिवकुमार खंडेलवाल, इन्दिरा कालोनी, सोनीपत, हरियाणा

ज्ञान तत्व मिल रहा है। आपने अंक तिरान्नवे में व्यवस्था और अव्यवस्था को लोकतंत्र के साथ जोड़ा तथा सुव्यवस्था और कुव्यवस्था को तानाशाही से। आपने अव्यवस्था का व्यवस्था में बदलने हेतु लोकतंत्र में संशोधन करके लोकस्वराज्य प्रणाली पर जोर दिया। मैं यह जानना चाहता हूँ कि चाहे तानाशाही हो या लोकतंत्र या दोनों को हटाकर लोकस्वराज्य आ जाय किन्तु है तो सबके मूल में लोक ही। जिस तरह सामाजिक मूल्यों में गिरावट दिख रही है, उससे तो यह स्पष्ट है कि बिना सामाजिक मूल्यों को ठीक किये लोक स्वराज्य कैसे व्यवस्था कर लेगा? आदमी कहाँ से आएँगे व्यवस्था ठीक करने वाले। टी.वी. पर करोड़ों लोग प्रवचन सुनते हैं पर अमल में कितने लाते हैं? आप स्पष्ट करें।

उत्तर – व्यवस्था से मेरा आशय स्वव्यवस्था से है। तानाशाही में व्यवस्थापक डिक्टेटर होता है, लोकतंत्र में कस्टोडियन होता है और लोकस्वराज्य में मैनेजर होता है। समाज के नैतिक मूल्य कानून से ठीक नहीं हो सकते। इसके लिये तो कानूनों के दो भाग करने होंगे। जो कानून समाजविरोधी कार्यों पर नियंत्रण के लिये जरूरी हों उनका उपयोग शासन करे और जो कानून समाज में चरित्र निर्माण के लिये बने हों उन्हें शासन हटा ले। कानूनों का काम चरित्र निर्माण न होकर चरित्र हीनता पर नियंत्रण तक सीमित होना चाहिये। शासन यदि समाज पर नियंत्रण करना शुरू कर देगा तब सारी गड़बड़ियाँ होंगी। समाज के नैतिक मूल्य तब तक ठीक नहीं होंगे जब तक समाज के नैतिक मूल्यों की परिभाषा और संरक्षण में शासन का हस्तक्षेप बनेगा।

7. श्री बाबूलाल माली, मन्दसौर, मध्यप्रदेश

ज्ञानतत्व अंक सत्तान्नवे में नई व्यवस्था के संवैधानिक प्रारूप की एक झलक मिली। कुछ बातें और स्पष्ट करें :–

(1) नई व्यवस्था में कामगारों विशेषकर कृषि कामगारों का क्या भविष्य होगा?
(2) विदेश नीति क्या होगी?
(3) बैंकों तथा उद्योग धंधों पर किसका नियंत्रण होगा? सरकारी या व्यक्तिगत।

उत्तर – नई व्यवस्था में कृत्रिम ऊर्जा के मूल्य इतने बढ़ा दिये जायें कि श्रमिक बेरोजगार न रहे। इससे रोजगार मिलना श्रमिकों के लिये आसान हो जायेगा। श्रम की मांग बढ़ेगी तो श्रम का मूल्य भी बढ़ेगा ही। कृषि कामगार भी अच्छी स्थिति में हो जायेंगे।

इससे कृषि का लागत मूल्य बढ़ेगा। जो किसान स्वयं अपनी खेती करते हैं उनका लागत मूल्य नहीं बढ़ेगा किन्तु जो दूसरों से कराते हैं उनका कार्य खर्च बढ़ेगा। भारत में शासन व्यवस्था कृषि की मूल्य वृद्धि को रोकती है। सरकार कृषि उपायों पर भारी कर लगाकर जो धन लेती है वह टैक्स का चक्र बदलता है। शासन कृषि उपज पर से टैक्स हटाकर उतना कर डीजल, बिजली आदि पर डाल दे। न शासन को हानि होगी, न किसान को और न ही उपभोक्ता को। बिजली, डीजल के स्थान पर श्रमिकों को काम मिल जायेगा।

विदेश नीति क्या होगी यह केन्द्र सरकार तय करेगी, संविधान नहीं। संविधान के अनुसार वर्तमान विदेश नीति के स्थान पर नई विदेश नीति कुछ अधिक विश्व व्यवस्था की ओर झुकी हुई हागी। धारा 0158 के अनुसार सामान्यतः भारत सरकार पंच फैसले या संयुक्त राष्ट्र संघ के निर्णय को स्वीकार करेगी। अस्वीकार करने के लिये उसे जटिल प्रक्रिया से गुजरना होगा।

सरकारें दो प्रकार की होंगी (1) केन्द्र सरकार (2) संघ सरकार। केन्द्र सरकार के पास पांच विभाग होंगे न्याय, वित्त, विदेश, सेना, पुलिस। अन्य सभी विभाग संघ सरकार के पास होंगे। केन्द्र सरकार बनाने का काम आम नागरिक सीधा वोट देकर संसद बनायेंगे। वह संसद केन्द्र सरकार होगी। वह पूरे भारत में अपनी कार्यपालक एजेन्सी बनाकर उन्हें पावर देगी और व्यवस्था करेगी।

संघ सरकार का गठन नीचे से क्रमशः होगा। इसमें परिवार, ग्राम, जिला, प्रदेश और संघ होंगे। प्रत्येक नीचे वाली इकाई ऊपर वाली इकाई का गठन करेगी। केन्द्र सरकार के पांच विभाग छोड़कर बाकी सभी विभाग ये इकाइयाँ परिस्थिति अनुसार बांट लेंगी। बैंक या तो ये सरकारें करेंगी किन्तु किसी भी हालत में बैंक या कोई उद्योग केन्द्र सरकार के नियंत्रण या हस्तक्षेप में नहीं होगा जब तक वह विदेश या सुरक्षा से न जुड़ा हो। हम सरकारीकरण के पूरी तरह विरूद्ध हैं। समाजीकरण या निजीकरण का चयन लोग करेंगे, संविधान नहीं।

8. श्री रामसेवक शुक्ल, तुलाराम बाग, इलाहाबाद, उत्तर प्रदेश 211006

ज्ञानतत्व अंक सत्तान्नवे मिला। संविधान पर व्यापक चर्चा होनी चाहिये। किन्तु अब तक यह स्पष्ट नहीं है कि वर्तमान स्थिति में संविधान का प्रारूप कौन तय करेगा तथा वह प्रारूप लागू कैसे होगा। संविधान बनाने और लागू कराने के कोई साथ न तो हमारे पास हैं नहीं। मूल काम है वर्तमान व्यवस्था में आमूलचूल परिर्वतन करना। यह कार्य बिना सामाजिक क्रान्ति के हो नहीं सकता। विभिन्न खंडों में बंटे भारतीय समाज से क्रान्ति की आशा व्यर्थ है। हम अपने परिवार की सड़ी गली परंपरा को तो तोड़ नहीं पाते और व्यर्थ में क्रान्ति की बात करते हैं। बेहतर होगा कि हम भारत की आत्मा को पहचाने। भारत की प्रजा का भारतीय करण करना ही इस समस्या का समाधान है।

उत्तर – आपने समस्याओं का समाधान क्रान्ति और सामाजिक क्रान्ति को असंभव बताकर अपनी निराशा का जो चित्र खींचा है, सामान्यतया परिस्थितियाँ वैसी ही है। किन्तु यथा स्थिति को तोड़न हेतु कुछ विशेष प्रयत्न करने होंगे जो सामान्यतया प्रारंभिक काल में असंभव ही दिखेंगे। पिछले तीन महिनों में अनेक ऐसे ही निराश लोगों को हमारे प्रयत्नों में सफलता की कुछ आशा दिखने लगी है। आपके बताये अनुसार दो ही संभावनाएँ हैं या तो यथास्थिति को चलने दिया जाय या समाज का भारतीय करण किया जाय। आप भारतीयकरण की दिशा में लम्बे समय से काम कर रहे हैं और मैं संवैधानिक व्यवस्था परिवर्तन की दिशा में लगा हूँ। यदि आपके प्रयत्नों से सफलता दिखेगी तो मैं यह काम छोड़कर आपके साथ लग जाऊँगा और यदि आपको संवैधनिक व्यवस्था परिर्वतन में कुछ उम्मीद दिखे तो आप उस पर विचार करेंगे। मैं निराशावादी नहीं हूँ। मैंने पहले अपने परिवार पर सफल प्रयोग किया और उसके बाद एक शहर पर किया। अब मैं कहने की स्थिति में हूँ कि यदि भारतीय संविधान में कुछ संशोधन हो जावे तो सारी अव्यवस्था दूर हो सकती है। प्रश्न है कि कौन करेगा और कैसे करेगा इस प्रश्न का उत्तर आपको भविष्य के एक वर्ष में बिना बताये मिलने लगेगा।

9. श्री जितेन्द्र कुमार अग्रवाल, 195/1, मनपसंद विला, सिविल लाइन्स, मेरठ, यू.पी.

मैं ज्ञानतत्व पढ़ता हूँ। मेर विचार में आपकी सोच थोड़ी–सी हिन्दुत्व की ओर झुकी हुई है। हमें अपने मुस्लिम भाइयों के प्रति कुछ और अधिक संवेदनशील हाना चाहिये। हिन्दुओं में भी अनेक रूढिवादी मान्यताएँ भरी पड़ी है। मंदिर में बिना काम के भी लाउडस्पीकर बजाना आम बात है जबकि इससे आम लोगों को बहुत परेशानी होती है पर वे मानते ही नहीं। इसलिये हमारी सोच सर्व धर्म समभाव की होनी चाहिये।

भारत में अनेक विरोधाभासी प्रथाएँ विद्यमान हैं। हम यह काम समाज पर छोड़ दें। आवश्यक नहीं कि रीतिरिवाजों के सुधार हेतु कानून ही बनें। हिन्दू धर्म में ढोल गंवार शुद्र पशु नारी के विषय में कितनी अनावश्यक टिप्पणी की गई है और ऐसी ही इस्लाम में चार पत्नियों के विषय में गलतियाँ हैं। इसके कारण इस्लाम को संगठन कह देना उचित नहीं। हमें किसी भी समुदाय के लिये भिन्न नामकरण से बचना चाहिये। लाखों वर्ष पूर्व तो धर्म यही था कि मजबूत कमजोर को दबा दे। सम्पूर्ण सभ्यता कृषि के आसपास घूमती थी। धीरे–धीरे महापुरूषों ने कुछ कानून बनाये और सभ्यता का विकास होता गया। हमें भी आज के परिवेश में सुधारों की दिशा में आगे बढ़ने का प्रयत्न करना चाहिये।

मैंने एक मुद्दे पर अनुभव किया कि शराबी, जुआरी आदि की अपेक्षा धूर्त, बेईमान, झूठे कई गुना अधिक खतरनाक होते हैं। दोनों में बहुत फर्क है। यह फर्क भी ध्यान में रखने लायक है।

उत्तर – आपने जो भी विश्लेषण किया वह पूरी तरह ठीक है। मेरे विचार हिन्दू और इस्लाम मं फर्क देखते हैं। मेरी मान्यता है कि मुसलमानों का अधिकांश धार्मिक संख्या विस्तार की बहुत चिन्ता करता है जबकि हिन्दू नहीं। मैं संघ और इस्लाम में अधिक फर्क नहीं समझता क्योंकि दोनों की कार्य पद्धति एक है किन्तु मैं संघ और इस्लाम की तुलना में हिन्दुत्व का पक्षधर हूँ क्योंकि संघ रहित हिन्दुत्व की कार्य प्रणाली बहुत भिन्न है। फिर भी मैं जो सोचता हूँ वह और विचार मंथन की दिशा में बढ़ती रहेगा। शायद भविष्य में इस संबंध में आप ही सही हों। मैं किसी भी धर्म आंतरिक मामलों में शासकीय कानूनों का विरोधी हूँ चाहे वह हिन्दुओं के लिये हो या मुसलमानों के लिये। एक से अधिक विवाह करना सामाजिक बुराई है, अपराध नहीं। जब कानून ने इसमें अनावश्यक हस्तक्षेप किया तब दूसरों को मौका मिला। उन लोगों ने सरकारी हस्तक्षेप का विरोध न करके कानून को समान रूप से लागू करने की हवा उठाई जो गलत थी वास्तव में शासन को ऐसे मामलों से दूर रहना चाहिये था। शराबी, जुआरो और अपराधी के बीच आपने जो अन्तर बताया वह बहुत सूझ बूझ वाला है। आज शासन इसके विपरीत प्रचार करता रहता है।

10. श्री मदनमोहन जी व्यास, अजन्ता रोड, रतलाम, मध्यप्रदेश

ज्ञानतत्व अंक अठान्नवे में आपने गांधीवादियों पर अस्पष्ट टिप्पणी की है। सच्चाई यह है कि गांधीवादी ही गांधी के हत्यारे हैं। गांधी एक अवधारणा हैं, निश्चित विचार है, और वह है ''स्वराज्य'' जिसका अर्थ है ''भारत गांव गणराज्यों का संघ हो।'' गांधीजी ने इस अवधारणा के लिये बैरिस्टरी छोड़ी, लंगोटी लगाई, जेल गये और अनेक प्रकार के कष्ट सहे। आज गांधीवादियों ने स्वराज्य की गांव गणराज्य वाली अवधारणा के स्थान पर अपनी सुविधानुसार सत्य, अहिंसा, साधन शुद्धि, सत्याग्रह आदि निरर्थक बातों को ही गांधी बना दिया जिससे इनकी अपनी दुकानदारी संस्थाओं के स्वरूप में निर्बाध चलती रहे।

गांव की सबसे छोटी इकाई "गांव" होना संभव नहीं इसलिये गांधी जी का गांव से आशय चौबीस गांवों को मिलाकर बनता है। आपका रामानुजगंज का प्रयोग बिल्कुल ठीक है। उसमें साधन शुद्धि की बातें घुसाना बेकार की बातें हैं। गांव को गैरकानूनी और अपराधों का भेद समझना चाहिये और शासन के अनावश्यक आदेशों की अनदेखी करके अपनी व्यवस्था खुद करने की पहल करनी चाहिये।

उत्तर – आपने गांधी और गांधीवाद को निकट से समझा है। आपका गांधीवादियों से भी पारिवारिक संबंध रहा है। आपने गांधीवाद के संबंध में जो परिभाषा प्रस्तुत की है उससे तो मेरी सहमति है ही किन्तु गांधीवादियों के संबंध में मैं आपकी टिप्पणी पर अपनी काई

टिप्पणी देने में असमर्थ हूँ क्योंकि मैं इस स्थिति का अधिक जानकार नहीं। सितम्बर दो तीन चार को दिल्ली में बैठकर जो योजना बनेगी उसमें आप रहेंगे ही। उसके बाद आगे की राह तय होगी कि आगे क्या करना है।

11. श्री महेश भाई, विजयीपुर, गोपालगंज, बिहार

ज्ञानतत्व मिला। पढ़ने पर कई बातें स्पष्ट हुई। कुछ विचार कुछ प्रश्न उठने स्वभाविक थे। जो इस प्रकार है :–

(1) आपने ज्ञानतत्व में कई बार लिखा कि सृष्टि से प्रारंभ से ही विचारधाराओं में संघर्ष शुरू नहीं हुआ (क) दैवी और (ख) आसुरी। मेरा मानना है कि यह संघर्ष सृष्टि के प्रारंभ से शुरू नहीं हुआ क्योंकि उस समय न समाज था न किसी प्रकार की भिन्न प्रवृत्तियाँ बहुत समय बीतने के बाद पैदा हुई जिसके बाद दोनों में संघर्ष हुआ होगा और तब कहीं जाकर समाज व्यवस्था बनी होगी।

(2) आपने लिखा है कि सम्पूर्ण भारत में झूठ को सौ बार बोलकर सच के रूप में स्थापित कर दिया जाता है जबकि हम सत्य को दस बार भी नहीं बोलते। आपके अनुसार यदि सच को दस बार भी बोला जाय तो वह झूठ पर भारी पड़ेगा। आवश्यकता यह है कि झूठ को चुनौती दी जाय।

झूठ को चुनौती देने के संबंध में मैं आपको बताना चाहता हूँ कि झूठ को चुनौती देने के प्रयत्न ने ही शंकर को शंकर से उठाकर शंकराचार्य तथा एक जुलाहे को जुलाहे से उठाकर कबीरदास बना दिया। आजकल जो झूठ की आंधी चल रही है उसके विरूद्ध कबीरदास जी के सूत्र वाक्य ''सामना करो'' ''सामना करो'' की सीख को आत्मसात् करना होगा। हम सामना करने से घबराते हैं। क्रूरता कायरता की निशानी है। जो कायर नहीं है वह क्रूर हो नहीं सकता। आज सम्पूर्ण सामाजिक वातावरण में क्रूरता का जो परिदृश्य झलक रहा है वह कायरता का लक्षण है, बहादुरी का नहीं। यदि हम कायर नहीं होते तो शराफत का लिवास पहनकर वह सब नहीं करते जो कुछ आज कर रहे हैं। इस शरीफों से आप कैसे उम्मीद करते हैं कि वे झूठ को चुनौती देंगे। इसलिये मैं इस निष्कर्ष पर पहुँचा हूँ कि इन शरीफजादों के माध्यमों से झूठ को चुनौती देने की उम्मीद त्याग कर हमें इनकी पहचान की कला विकसित करनी होगी, इन शरीफ शोषकों के झूठ को चुनौती देनी होगी और कबीरदास जी के वाक्य को सदा याद रखना होगा कि ''सामना करो''।

(3) गांधी गांधीवाद और गांधीवादियों की चर्चा छेड़कर आपने बहुत अच्छा किया। गांधी को मैंने भी समझने का प्रयास किया। विनोबा जी द्वारा स्थापित बोध गया आश्रम में साधु सुरेन्द्र जी से मेरा सम्पर्क आया। उन्होंने मुझे गांधी जी के जीवन की एक घटना बताई कि नमक आंदोलन के दाण्डी मार्च के क्रम में गांधी जी जहाँ से गुजरते थे उन गांवों में वे घास फूस के झोपड़ियों में रात्रि विश्राम करते थे। प्रातः गांव के लोग उक्त स्थान को पूज्य समझकर वहां घी के दीये जलाने लगे जो आटे के बने हुए दीये थे। सुरेन्द्र जी ने एक स्थान पर ऐसे दीये बुझाकर उसका घी आटे में मिला दिया और रोटी बनाकर खा ली। यह शिकायत सरदार पटेल से हुई और पटेल जी ने गांधी जी से सुरेन्द्र जी के विरूद्ध शिकायत की। गांधी जी ने हंसते हुए सुरेन्द्र जी के कार्य का बुरा नहीं माना जिससे पटेल जी आदि को बहुत निराशा हुई। सच्चाई यह है कि गांधीजी स्वयं ही ऐसी पूजा के पक्ष में नहीं थे। उनके जीवन काल के उनके वाक्य ही उनके चरित्र को परिलक्षित करते हैं जिसे बाद में गांधीवादियों ने भुला दिया।

(4) इन्दिरा जी ने पच्चीस जून पचहत्तर को आपात्काल लगा दिया जिसका विपक्ष ने भरपूर विरोध किया और आज तक करता है। अभी चौबीस जून दो हजार पांच को तीस वर्ष बाद बी.बी.सी. ने एक प्रसारण में आपात्काल के प्रखर विरोधी युवा तुर्क चन्द्रशेखर तथा एक अन्य प्रमुख व्यक्तित्व की जीवनी को उद्धरित करते हुए निष्कर्ष निकाला कि आज की राजनैतिक नेताओं की जीवन शैली की अपेक्षा तो इन्दिरा का शासन ठीक ही था। विश्वनाथ प्रताप सिंह, अटल बिहारी बाजपेयी, के.एस.सुदर्शन जी आदि ने श्रीमती गांधी की अनेक अवसरों पर प्रशंसा की है। दूसरी ओर जार्ज फर्नाडीस ने इन्दिरा गांधी की कार्य प्रणाली की जम कर आलोचना की है। प्रसिद्ध पत्रकार रामबहादुर राय जी ने आपात्काल को इस संदर्भ तक लाभदायक बताया कि नागरिकों को अपनी राजनैतिक शक्ति का ज्ञान हुआ।

आपने जिस तरह अनेक विषयों पर अपनी बेबाक टिप्पणी के माध्यम से हम पाठकों को कुछ विचार मंथन की सामग्री उपलब्ध कराई है उसी तरह आप इन्दिरा गांधी और उनका आपात्काल विषय पर भी कुछ अपने विचार हमें भेजने का कष्ट करें।

उत्तर – (1) मेरा सृष्टि के प्रारंभ शब्द का आशय समाज व्यवस्था के प्रारंभिक काल से है। भविष्य में मैं अपने शब्दों को संशोधित करने का प्रयत्न करूँगा।

(2) मैं आपके विश्लेषण से सहमत हूँ। हमें वास्तविक शरीफों और ढ़ागी शरीफों के बीच का अन्तर समझने की कला विकसित करनी चाहिये। वैसे तो प्रत्येक व्यक्ति इस अन्तर की कला के विकास के प्रयत्न करता ही रहता है किन्तु ढ़ोंगी शरीफ भी अपने ढ़ोंग की कला के विस्तार में निरंतर लगे हुए हैं। उनका प्रचार तंत्र बहुत मजबूत है। अनेक शरीफ लोग भी उनकी धूर्त कला के प्रभाव में आकर उनकी भाषा ही बोलने लगते है। कबीर ने कहा कि सामना करो। मैं भी कहता हूँ कि सामना करो। अन्य महापुरूष भी तो सामना करने की सलाह देते ही ह। आवश्यकता यह है कि हम सामना करने की कला का विकास करें। दो, तीन, चार सितम्बर के सम्मेलन में सामना करने की कला पर चर्चा करके कुछ घोषणाएँ होंगी। शायद ये तरीके सामना करने की दिशा में आगे बढ़ने में कुछ सहायक हों।

(3) विचार और चरित्र के अन्तर को समझना बहुत कठिन कार्य है। इसी तरह विचार का विस्तार भी चरित्र के विस्तार से कई गुना अधिक कठिन कार्य होता है। सुरेन्द्र जी के विषय में दिये गये आपके उदाहरण से यह स्पष्ट होता है कि गांधी के जीवन काल में ही उनके अनेक अनुयायी उनके विचारों को समझने में कठिनाई और चरित्र का अनुकरण करने में सुविधा समझते थे। गांधी की मृत्यु के बाद तो यह कठिनाई बहुत ही बढ़ गई। गांधी की कानूनी विरासत का दावा करने वाले अधिकांश गांधीवादी सर्वोदय से है। वहां भी यह कठिनाई स्पष्ट दिखती है। आप जीवन भर सर्वोदय से जुड़े रहे। आपने गांधी विचार को आगे बढ़ाने के निमित्त ही पत्र लिखा है। आप इस कार्य के लिये बधाई के पात्र हैं। मेरे लेख ''गांधी गांधीवाद और गांधीवादी'' ने अनेक विचारकों को गांधी विचार के विस्तार के लिये स्वर बनने में सहायता की है। इसे ही मैं अपनी और अपने लेख की सफलता मानता हूँ।

(4) आपने श्रीमती गांधी के विषय में देश और समाज में फैली दो विपरीत धारणाओं का उल्लेख करते हुए इस विषय में दो टूक विचार लेख के रूप में प्रस्तुत करने की इच्छा व्यक्त की है। मैं ऐसा लेख अवश्य लिखूंगा। अभी सम्मेलन की तैयारियों का समय है। इसके बाद मैं इस दिशा में भी अपने विचार करने का प्रयत्न करूँगा। ''''